जल संरक्षण की पुरातन विधियाँ – राजस्थान की बावड़ियाँ

डॉ. सन्जू चलाना बजाज

सहायक प्रोफेसर (इतिहास विभाग)

भाग सिंह खालसा कॉलेज फॉर विमैन, काला टिब्बा, अबोहर

भारत विविधताओं का देश है व अपनी विभिन्न संस्कृतियों के लिए जाना जाता है। भारत की सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण करने के लिए समय–समय पर कड़े कदम उठाए जाते हैं। संस्कृति का महज़ भी तब है, जब मनुष्य का जीवन है। मनुष्य के जीवन के लिए जल अमूल्य निधि है। मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति में ही लगा रहता है। जिस तरह हम संस्कृति के संरक्षण में लगे रहे, उसी तरह राजस्थानवासियों ने सदैव जल–संरक्षण व भण्डारण के लिए प्रयोग किए। जोकि वर्तमान समय में भयानक जल संकट का रूप ले चुकी समस्या के निवारण हेतु प्रयोग में लिए जा सकते हैं, वह है– राजस्थानी स्थापत्य कला, जल संरक्षण व भण्डारण के नमूने–बावड़ियां। ये बावड़ियां जो राजस्थान जैसे प्रायः अकालग्रस्त क्षेत्र में वर्षा जल को संचित रखने के लिए बनाई जाती थीं। राजस्थान के सभी समुदायों में बावड़ी बनाने का कार्य किया जाता था। ये बावड़िया जहाँ एक तरफ दैनिक जीवन की आवश्यकता को पूरा करती थीं, दूसरी तरफ उनमें की गई महीन कलाकारी, संरचनात्मक अलंकरण, कलात्मक वास्तुकला उनके ऐतिहासिक धरोहर होने की प्रतीक है। ये बावड़ियां उस समय के लोगों की कला के प्रति परिष्कृत सुरुचि की प्रतीक हैं। इसके साथ–साथ बावड़ियां परोपकार, धार्मिकता, कुदरती संसाधनों की संरक्षण की प्रतीक हैं। प्रस्तुत शोधपत्र में बावड़ियों को स्थापत्यकला, वास्तुकला व जलसंरक्षण के माध्यम से वर्तमान में उभर रहे जल संकट के निवारण के लिए एक स्रोत के रूप में प्रस्तुत का प्रयोग किया गया है। वर्तमान में हम अपनी आर्थिक समस्याओं के निवारण हेतु योजनाओं का निर्माण करते हैं, परन्तु रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में जिन कुदरती संसाधनों की आवश्यकता है, उनके संरक्षण की योजनाओं की तरफ पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जा रहा, जोकि हमें भयंकर संकट की ओर ले जा रहा है। यह देखते हुए उपर्युक्त वर्णित बावड़ियों का संक्षिप्त अध्ययन आवश्यक है, जोकि वर्तमान के शहर निर्माण योजनाओं में कुदरती संसाधनों के संरक्षण में सहायक होगी।

भारत प्राचीन सभ्यता व संस्कृतियों का देश रहा है। संस्कृति एक सांझी सोच का परिणाम है, क्योंकि संस्कृति में विविधता है। भारत की भौगोलिक विविधता पूरी दुनिया में अनूठी है। इन्हीं विविधताओं के कारण यहाँ की संस्कृति में व्यापकता दिखाई देती है। हमारी सांस्कृतिक परम्पराएँ हमारे नैतिक जीवन मूल्यों को निर्धारित करती हैं, जिससे हमारा सांस्कृतिक जीवन संचालित होता है। यह संस्कृति जो हमें विरासत में मिली है, यह हमारी संरक्षणवादी सोच का परिणाम है। भारत में संस्कृति का संरक्षण विकास के साथ–साथ चलता रहा। जैसे–जैसे संस्कृतियाँ विकसित होती गई, वैसे–वैसे संरक्षण के स्वरूप में परिवर्तन आए। संरक्षण की कड़ी को आगे बढ़ाते हुए प्रस्तुत शोध–पत्र में जल–संरक्षण की व्यवस्था पर प्रकाश डाला गया है।

प्रकृति ने मानव–जीवन को बेहतर दिशा में ले जाने में हमेशा सहायता की है। मानव ने भी हर कदम पर इससे तालमेल बिठाते हुए जीवन को संवारा व अपने आपको इसका हिस्सा माना। जल प्रकृति की अनुपम देन है। बिना जल के जीवन संभव नहीं है। सभी प्राणियों के लिए जल अनिवार्य है। पूरे जैविक जीवन के अस्तित्व में हमेशा यह निर्धारित किया गया है कि संस्कृतियाँ कैसे काम करती हैं। मनुष्य के आदिमकाल के बारे में जितनी जानकारियाँ हैं, अगर वे सही हैं तो मनुष्य शुरू से ही संस्कृति बनाने में लगा हुआ है। अतः अलग–अलग भौगोलिक स्थितियों में अलग–अलग संस्कृतियाँ बनीं। उनका विकास हुआ, परिवर्तन हुआ और पतन हुआ। वैसे संस्कृतियों का विकास भी वहीं हुआ जहाँ पानी था। प्राचीनकाल से ही अगर देखा जाए तो समाज का निर्माण वहीं हुआ, जहाँ पर्याप्त पानी था। यह भी कहा जा सकता है कि सभी महान् सभ्यताओं का जन्म नदियों के किनारे ही हुआ। नदियाँ हमारी संस्कृति, सभ्यता, संगीत, कला, साहित्य और वास्तुकला की केन्द्रीय भूमिका में शामिल रही हैं।

मिस्र की सभ्यता, नील नदी के निचले किनारे पर केन्द्रित रही। 'मैसोपोटामिया' का यूनानी अर्थ है– दो नदियों के बीच। यह इलाका दजला (टिगरिस) और पफरात (इयुप्रेफटीस) नदियों के बीच पड़ता है। सिन्धु सभ्यता जिसका विकास घग्घर, सिंधु, सरस्वती के किनारे हुआ था।

प्राचीनकाल से ही भारत में जल संरक्षण करने का, उसका बुद्धिमतापूर्ण दोहन करने का प्रयास किया गया है। यह भी माना जाता है कि सम्भवतः 'कुँओं का आविष्कार' हड़प्पा सभ्यता के लोगों ने किया। इसका प्रमाण यह है कि पुरातात्विक सर्वेक्षणों में हड़प्पा के हर तीसरे घर में कुँआ मिला है। भारत में प्राचीन जलीय सभ्यताओं के विकसित होने के पीछे एक दृष्टि यह भी है कि ये नागरिक सभ्यताएँ 'एकीकृत जल संसाधन प्रबन्धन' के वैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित थीं। जल के प्राचीन और मध्ययुगीन प्रबन्ध को तत्कालीन शासन द्वारा विनियमित किया जाता था। इसी 'जल नीति' का वर्णन अथर्ववेद, कौटिल्य के अर्थशास्त्र व मनु–स्मृति में किया गया है। पौराणिक ग्रंथों में तथा जैन व बौद्ध साहित्य में नहरों, बांधों, तालाबों, कुँओं व बावड़ियों का विवरण मिलता है। इसमें इनके निर्माण तथा रख–रखाव के तरीकों के साथ ही इनके नवीनीकरण के कारण व्यक्ति को प्राप्त होने वाले यश व पुण्यों का वर्णन भी मिलता है। चन्द्रगुप्त मौर्य के जूनागढ़ अभिलेख में सुदर्शन झील और कुछ नदियों के निर्माण का विवरण प्राप्त होता है, जो इस बात की ओर इशारा करता है कि भारत में जल–संसाधन की उपलब्धता के अनुसार ही जल–संसाधन प्रणालियाँ विकसित रही हैं। इन्हीं प्रणालियों में एक विकसित प्रणाली थी–बावड़ी।

बावड़ी या बावली उन सीढ़ीदार कुँओं या तालाबों को कहते हैं, जिनके तल तक सीढ़ियों के सहारे आसानी से पहुँचा जा सके। भारत में बावड़ियों के निर्माण और उपयोग का लम्बा इतिहास है। कन्नड़ में बावड़ियों को 'कल्याणी' या 'पुष्करणी', मराठी में 'बाख' तथा गुजराती में 'बाव' कहते हैं। संस्कृत के प्राचीन साहित्य में इसके कई नाम हैं–वापि, दीर्घा, वाचिका, कर्कन्धु एवं शकन्धु आदि।

बावड़ियों का निर्माण ज़्यादातर राजस्थान में किया गया है। राजस्थान भारत के भूरे यानि शुष्क क्षेत्रों में से एक है। साथ ही गुजरात व इनसे जुड़ता इलाका, राजस्थान के पश्चिम रेगिस्तान में बरसात बहुत कम होती है। उस अकालग्रस्त रहने वाले राज्य में जल हमेशा से ही अमृत का पर्याय रहा है। इसी कारण एक आम राजस्थानी के दैनिक जीवन में पानी वह बिन्दु है, जिसके इर्द–गिर्द उसका जीवन घूमता है। पानी की इसी कमी के कारण राजस्थानियों ने सदैव ही उसके संरक्षण व भण्डारण के लिए वैज्ञानिक नवाचार व प्रयोग किए हैं। राजस्थान में जहाँ पानी संस्कार है, संस्कृति है। पानी गीतों में, उलाहनों में

और पानी की कमी को जहाँ विनम्रता से सहा गया है, ऐसा कि पाल बांध ली। पानी को रोका ऐसा कि उसका श्रृँगार किया। श्रृँगार ऐसा कि उसके ठिकानों को झालरों से सजाया। सजाया ऐसा कि कथाओं और गीतों से जोड़ दिया। राजस्थानी गीतों में भी पानी की महत्ता को बताया कि किस तरह पानी इकट्ठा किया जाता है। पानी को गीतों में सहेजा और ऐसा सहेजा कि पानी सहेजने की परम्पराओं में सबसे अद्भुत 'बावड़ियां' बना डाली। बावड़ियां ऐसी बनाई कि जैसे मोती जड़े हों। अनुपम मिश्र के अनुसार, ''बावड़ियां, पगबाप की भव्य परम्परा रही है। वैसे तो बावड़ी दिल्ली के कनॉट प्लेस तक में मिल जायेगी, लेकिन देश के मानचित्र पर इसकी एक खास पट्टी रही है, जो गुजरात, राजस्थान और मध्यप्रदेश से गुज़रती है।''

प्रश्न यह उठता है कि सबसे पहले बावड़ी किसने बनाई होगी? हालांकि इतिहास में इस बात का कोई लेखा–जोखा नहीं है। परन्तु इतना सोचा गया होगा कि चौड़े गड्ढे में से ज़मीन का पानी निकालने के लिए चलो सीढ़ियां बनाते हैं, क्योंकि ज़मीन और बारिश का पानी बहकर नीचे भरता तो ज़रूर था, मगर साथ में मिट्टी भी ले जाता था। फिसलन बनाता। ज़मीनी पानी भी नीचे से रेत को भिगोता और रेत पानी को गटक जाती होगी। तब पानी को निराकार मान लिया, उसके गीत गाए। चारों तरफ बड़ी बेतरतीब लम्बे छोटे पत्थरों को जमाया गया। बस जमाते–जमाते एक परम्परा बन गई होगी। बेतरतीब से तरतीबवार कोई कथा तो नहीं मिलती। कथाएं तो पानी से पूँजी बनाने की मिलती हैं। अंजुली में पानी का प्रसाद। न जाने कौन था, मगर ईश्वर को पानी का चढ़ावा देता था। करते–करते अनुभव से प्रेम से, आस्था से, भजन से पानी के संग्रह करने की बेहद ही उमदा जगह और वास्तु का सुन्दर तोहफा...बावड़ी।

राजस्थान के सभी समुदायों में बावड़ी बनाने का कार्य हमेशा केन्द्रीय स्थान पर रहा है। दूसरी तरफ राजस्थान में निजी तौर पर बनाई जाने वाली बावड़ियां सामुदायिक उपयोग के लिए खुली थीं। सहयोग व भाईचारे की प्राचीन मध्यकालीन जीवन की मुख्य विशेषताएं एवं सार्वजनिक उपयोग के लिए कुँओं–जलाश्यों तथा बावड़ियां एक परोपकारी गतिविधि थीं। इन्हें खुदवाना भी परोपकार का ही काम था। बावड़ी कहां बने, यह तय किया जाता था बरसात से पहले या उससे भी पहले...एक शुभ दिन चुना जता था। शगुन–अपशगुन सबकुछ देखा जाता था। पंचांग देखा जाता था। बावड़ी चाहे राजा बनवाए, साहूकार बनवाए, एक जाति के लोग मिलकर बनवाएं या दयावान लोग बनवाएं, ईश्वर की आराधना सबसे पहले की जाती थी। उस समय इस बात के पारखी महाराज होते थे, जो यह बताते थे कि 'बावड़ी' कहां बनेगी। उन्हें पानी वाले महाराजा कहा जाता था तथा तय स्थान पर बावड़ी बनाने का कार्य किया जाता था।

ईसा की पहली शताब्दी के लगभग पश्चिमी राजस्थान में इस तरह की बावड़ी खोदने की परम्परा 'शक जाति' अपने साथ लेकर आई थी। अधिकांश बावड़ियां मन्दिरों, किलों या मठों के नज़दीक बनाई जाती थीं। मन्दिरों, महलों, किलों, छतरियों के अलावा राजस्थान की बावड़ियां भी अपने विशिष्ट स्थापत्य के लिए जानी जाती हैं। धर्मनिरपेक्षता का उदाहरण बनती बावड़ियां। करीने से नीचे की तरफ जाती आकार के अनुसार सीढ़ियां। जब बादलों से फिसलकर पानी इन सीढ़ियों पर गिरता है, नीचे जाते हुए तो एक डिज़ाइन बनाता है। बावड़ी कहीं गोल, कहीं चौकोर बनी थीं, कभी एक द्वार, कभी दो और कभी तीन प्रवेश द्वार और एक मंज़िल से दो–तीन मंज़िलों से पाँच मंज़िलों तक। यहां तक कि चंपारण में कुँएनुमा जहां पानी एक सर्पिल सीढ़ियों से जाता था। बावड़ियों को लोकजीवन में मंदिर भी समझा जाता है। शीतल जल। सुबह–सवेरे ब्राह्मण एक दीया जलाता और सीढ़ियां उतर कर पानी को माथा टेकता था।

बावड़ियां जन्म, मरण और परण से जुड़ी थीं। धार्मिक उत्सवों पर स्नान के लिए प्रयोग में आती थीं। शिलालेख सिद्ध करते हैं कि राहगीरों, राजपरिवारों, धार्मिक स्थानों, शमशान, यज्ञ और शिकार करने, दान करने, अकाल राहत कार्यों आदि के प्रयोजन से सराय, विश्रामगृह, बावड़ी कुंड, कुँओं का निर्माण करवाया जाता था।

मध्ययुगीन काल में राजमाता द्वारा उसकी जागीर के राजस्व से बावड़ियों या तालाबों का निर्माण कराने की परम्परा थी। महाराजा जयसिंह के शासनकाल के दौरान चितौड़गढ़ किले से उदयपुर तक के मार्ग में हर पाँच कोस पर बावड़ियों की एक श्रृँखला का निर्माण करवाया गया था। मुगलों के समय यात्रा की सुविधा के लिए जयपुर से दिल्ली, आगरा और अजमेर के मार्ग में बावड़ियों की कई श्रृँखलाएँ बनाई गई थीं। सामंती सरदारों, स्थानीय जमींदारों, अमीर व्यक्तियों, बंजारों और साधु आदि ने भी सड़कों के किनारे, धार्मिक स्थलों पर यहां तक कि दूर–दराज़ के क्षेत्रों में भी जल उपयोग के लिए स्थानीय स्तर पर बावड़ियों और तालाबों का निर्माण करवाया। शुरू में ये साधारण बनती थीं, जैसे–जैसे समय गुज़रता गया ये महीन कलात्मक उत्कीर्ण से युक्त मूर्तियों व कलाकृतियों की साज–सज्जा के साथ विकसित होकर मनभावन व जटिल होती गई। उनका डिज़ाइन और संरचनात्मक अलंकरण उन क्षेत्रों की विशिष्ट शैली को दर्शाते हैं। पश्चिम में कच्छ के रण के तट के कुँए व बावड़ियां आकार में भिन्न होती हैं। वे घाटों से घिरी हुई हैं तथा पानी के लिए जल–संग्रहण क्षेत्र में नीचे की ओर जाती हुई हैं। अरावली के पहाड़ी पथ में बावड़ियां अत्याधिक कौशलयुक्त, कलात्मक वास्तुकला की अनुपम कृतियां हैं। बावड़ियों को उनके आकार व मज़बूती को ध्यान में रखकर बनाया जाता था। इनकी बनावट इतनी पुख्ता है कि भूकंप भी इनका कुछ नहीं बिगाड़ पाए। 11वीं शताब्दी तक बावड़ी की प्लानिंग और डिज़ाइन ने वास्तुशास्त्र की उत्कृष्टता प्राप्त कर ली थी और बावड़ी हिन्दू मानकों पर विराजमान हो गई। राजस्थान में अलग–अलग जगहों पर बावड़ियों का निर्माण करवाया गया है। बूंदी, अलवर, टौंक, भीलवाड़ा, जयपुर क्षेत्रों में पाए जाने वाले कुंडों के आसपास कलात्मक सीढ़ियां और स्तंभ के मनोहारी अलंकरण अत्यंत आकर्षक हैं। सबसे पहले जयपुर की बावड़ी की बात करते हैं, जयपुर से 95 किलोमीटर दूरी पर स्थित आभानेरी गांव में विश्व की सबसे बड़ी बावड़ी (सीढ़ियों वाला कुँआ) स्थित है, जिसका नाम है– चांद बावड़ी।

चांद बावड़ी राजस्थान की सबसे प्राचीन बावड़ी है तथा सबसे प्राचीन जल संरक्षण का स्रोत है। लगभग 3000 वर्ष पूर्व आभानेरी गांव में इस प्रकार के जल संरक्षण स्रोत का मिलना अपने आप में आश्चर्य से कम नहीं है।

आभानेरी गांव जयपुर–आगरा राष्ट्रीय राजमार्ग पर स्थित एक छोटा सा कस्बा है। इसका शुरूआती नाम 'आभा नगरी' अर्थात् चमकने वाला शहर था। लेकिन कालांतर में भाषा के अपभ्रंश की वजह से इसका नाम धीरे–धीरे 'आभानेरी' बन गया। यह गांव रोमांचक पहाड़ियों तथा हर्षत माता के मंदिर के लिए प्रसिद्ध है और इसी वजह से पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र रहा है।

चांद बावड़ी के बारे में एक लोक कहानी है कि अकाल के दौरान चरवाहे बड़ी संख्या में पशु लेकर आते थे और सैंकड़ों की संख्या में एक साथ बावड़ी में उतर कर प्यास बुझाया करते थे। चांद बावड़ी से जहां लोगों की ज़रूरतों को पूरा किया जाता था, वहीं हर्षत माता का मंदिर होने की वजह से धार्मिक महत्व भी था। मंदिर में जाने वाले श्रद्धालु के लिए हाथ–मुंह धोना एक पवित्र परम्परा मानी जाती थी। श्रद्धालु यहां पवित्र होकर फिर दर्शनों को जाते थे।

चांद बावड़ी का निर्माण निकुंभ राजवंश के राजा चांद ने करवाया था। जिन्होंने आठवीं–नौवीं शताब्दी में आभानेरी पर शासन किया। इसी वजह से चांद बावड़ी के निर्माण का काल भी आठवीं–नौवीं शताब्दी का ही माना जाता है। यह बावड़ी कितनी गहरी है, इसके बारे में अलग–अलग तथ्य हैं। कहीं पर तो 64 फुट गहरी पर कहीं 100 फुट गहरी भी बताया गया है। यहां पर तेरह आढ़ी रेखाओं में सीढ़ियां जुड़ी हुई हैं। देखकर लगता है कि जैसे कोई भूल–भुलैया है। यह 35 मीटर वर्गाकार आकृति में बनी है, जो ऊपर से चौड़ी और नीचे तक आते–आते कम चौड़ी हो जाती है। यहां पर 3500 सीढ़ियां हैं। ऊपर से नीचे तक पक्की बनीं सीढ़ियों के कारण पानी का स्तर चाहे जो भी हो, हमेशा आसानी से भरा जा सकता है। सीढ़ियों के दोनों ओर गहरे सौपान होने के कारण इसे 'स्टैपवेल' भी कहा जाता है। सीढ़ियां भूल–भुलैया के रूप में है, इसलिए सीढ़ियों के बारे में यह कहा जा सकता है कि कोई व्यक्ति जिस सीढ़ी से नीचे उतरता है, वापिस कभी भी उसी सीढ़ी से ऊपर नहीं आ पाता है। असंख्य सीढ़ियों का जाल होने के कारण देखने में यह बावड़ी अद्‌भुत है। बावड़ी की सबसे निचली मंज़िल पर बने दो ताखों में स्थित गणेश व महिषासुर मर्दिनी की भव्य प्रतिमाएं इसकी खूबसूरती में चार चांद लगा देती हैं।

बावड़ी के चारों ओर दोहरे खुले बरामदों का परिसर है, जबकि प्रवेश द्वार के दाएं ओर छोटा गणेश मंदिर व बाएं ओर स्मारक परिसर का कार्यालय बना है। इसका प्रवेश द्वार उत्तर की ओर है। नीचे उतरने के लिए इसमें तीन तरफ से दोहरे सौपान बनाए गए हैं। इस बावड़ी के भीतर बनी तीन मंज़िला तिबारियों, गलियारे और कक्ष भी अपनी बेमिसाल बनावट, पाषाण पर उकेरे गए शिल्पों और भवन–निर्माण शैली से आने वाले को हैरान करती है। चांद बावड़ी के चारों तरफ लोहे की लगभग तीन फुट की बाधक मेढ लगाई गई है। इसे लांघने की अनुमति नहीं है। बाहर से इसका नज़ारा लिया जा सकता है। बावड़ी में पानी एक आयताकार कुंड में भरा है। कुंड के तीन ओर जलनुमा सीढ़ियां हैं व एक ओर तिबारियां तथा खुले कक्ष बने हैं, जिनमें स्नान के वस्त्र बदले व सुखाए जाते हैं। बावड़ी की इन्हीं तीन मंज़िला तिबारियों और झरोखों में कुछ छोटे मंदिर भी बने हैं। वास्तव में तो बावड़ियों को लोकजीवन में मंदिर ही माना जाता था। इसे अंधेरे–उजाले की बावड़ी भी कहा जाता है। इस बावड़ी में एक 17 किलोमीटर लम्बी सुरंग है, जो पास ही स्थित गांव भांडारेज में निकलती है। यह माना जाता है कि युद्ध के समय राजा व उसके सैनिकों द्वारा इस सुरंग का प्रयोग किया जाता था। गुप्त युग के पश्चात् तथा आरंभिक मध्यकालीन स्मारकों के लिए प्रसिद्ध आभानेरी पुरातात्विक महत्व का प्राचीन गांव है।

रानी जी की बावड़ी

बूंदी में लगभग 71 छोटी बावड़ियां हैं। सुंदरतम् रानी जी बावड़ी की गणना एशिया की सर्वश्रेष्ठ बावड़ियों में होती है। यह बावड़ी 1699 ई. में राजा राव अनिकह की छोटी रानी नाथावती द्वारा बनवाई गई थी। उस समय उसके पुत्र बुधसिंह का शासन था। यह 46 फुट गहरी तथा 46 फुट चौड़ी है। बावड़ी के अंदर जाने के लिए लगभग 200 सीढ़ियां हैं। इस बावड़ी में प्रवेश के लिए तीन दरवाज़े हैं। इसमें लगे सर्पाकार तोरनों की कलात्मक पच्चीकारी अत्यंक आकर्षक है। बावड़ी की दीवारों में विष्णु के अवतार मत्स्य, कच्छपवाराह, नृसिंह, वामन, इन्द्र, सूर्य, शिव, पार्वती और गजलक्ष्मी देवी–देवताओं की मूर्तियां हैं। यह बावड़ी मुगल राजपूत कला का मिश्रण है। यह उत्तर–मध्य युग की अनुपम देन है। इस बावड़ी को भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग द्वारा सुरक्षित ईमारत का दर्जा मिला है।

नीमराणा की बावड़ी, अलवर

राजा टोडरमल ने 18वीं शताब्दी में नीमराणा अलवर में इस बावड़ी का निर्माण करवाया। इस बावड़ी की लम्बाई 250 फुट व चौड़ाई 80 फुट है। इसमें समय–समय पर छोटी सैनिक टुकड़ी को छुपाया जा सकता है। यह मध्यकालीन इंजीनियरिंग का अद्भुत नमूना है। इस नौ मंज़िला बावड़ी के निचले भाग में तापमान 19 डिग्री कम हो जाता है और इसमें दिन में प्रकाश का तीव्रतम स्तर मध्य गर्मियों के मध्य दिन में 300 डिग्री तक बना रहता है।

पन्ना मीणा की बावड़ी, आमेर, जयपुर

कहीं कुँएनुमा तो कहीं छोटी बावड़ी उदाहरण यूँ तो बहुत हैं, परन्तु जयपुर में 17वीं शताब्दी की अत्यंत आकर्षक आमेर की पन्ना मीणा कुंड एक बहुत ही खूबसूरत जगह है। इस बावड़ी के एक तरफ जयगढ़ व दूसरी ओर पहाड़ों की नैसर्गिक सुंदरता है। यह अपनी अद्भुत आकार की सीढ़ियों, अष्टभुजा किनारों और बरामदों के लिए विख्यात है। सीढ़ियों की आठ आड़ी रेखाएं हैं। बीच–बीच में आले बने हैं। बावड़ी में नीचे तक जा सकते हैं। इसके चारों किनारों पर छोटी–छोटी छतरियां और लघु–देवालय इसे मनोहारी रूप प्रदान करते हैं।

हाड़ी रानी की बावड़ी, टोडाराय सिंह, टोंक

बेजोड़ स्थानीय कला के इस नमूने का निर्माण बूंदी की राजकुमारी हाड़ी रानी ने लगभग 16वीं शताब्दी में करवाया था। जिसका विवाह सोलंकी शासक के साथ हुआ था। इसके एक ओर बने अनूठे विश्रामगृह अपने आकार, ऊँचाई व ठंडक के लिए जाने जाते हैं।

रंगमहल सूरतगढ़ की बावड़ी

सूरतगढ़ किसी समय यौधेय गणराज्य की राजधानी था। पहले सिकंदर के हमले से हानि उठानी पड़ी। उसके हूणों के हमले से तो रंगमहल पूरी तरह से नष्ट हो गया था। खुदाई में यहां से एक प्राचीन बावड़ी प्राप्त हुई है। जिसमें दो फुट लम्बी व दो फुट चौड़ी ईंट लगी हुई है। यह बावड़ी इस बात का प्रतीक है कि शकों के भारत आगमन के बाद भी रंगमहल सुरक्षित था, क्योंकि बावड़ी बनाने की कला शक अपने साथ भारत में लाए थे।

भीका जी की बावड़ी, अजमेर

अजमेर से 18 किलोमीटर दूर पूर्वोत्तर दिशा में अजमेर–जयपुर रोड पर स्थित यह बावड़ी भीका जी की बावड़ी के नाम से जानी जाती है। इसमें संगमरमर पर उत्कीर्ण हिजरी 1024 (1615 ई.) का फारसी लेख उत्कीर्ण है। अभिलेख फलक पर उकडू बैठा हुआ हाथी, अंकुश व त्रिशूल बना है। पुरातात्विक महत्व की इस बावड़ी में पानी तक पहुंचने के लिए सीढ़ियां बनी हुई हैं।

बाटाडू का कुँआ, बाड़मेर

बाड़मेर के ज़िले की पंचायत समिति के गांव बाटाडू में आधुनिक व पाषाण संगमरमर से बने हुए हैं, जिन पर की गई धार्मिक युग की शिल्पकला दर्शनीय है। इन प्रमुख बावड़ियों के अलावा अन्य बहुत सी बावड़ियां राजस्थान में हैं। जैसे–

- गंगरार चितौड़ में 600 वर्ष से पुरानी दो बावड़ी।
- बारां के कोतवाली परिसर में एक बावड़ी
- बूंदी में गुल्ला की बावड़ी, श्यामबावड़ी, व्यास की बावड़ी मूर्ति व शिल्पकला की दृष्टि से अनुपम है।
- जोधपुर व मीनमाल में आज भी 700–800 ई. की बनी बावड़ियां मौजूद हैं।
- रेवासा सीकर में दो बावड़ियां दर्शनीय हैं। इनको परम्परागत जल संरक्षण के रूप में काम लिया जा सकता है।
- राजगढ़, अलवर में 18वीं शताब्दी में बनी महंत जी की बावड़ी।
- 18वीं शताब्दी ई. धौलपुर में बनी गोलबावड़ी की सीढ़ियां मेहराब, एकल प्रस्तर स्तंभ जल संरक्षण के एक विशाल प्रयास के अद्भुत उदाहरण को मुखर करती हैं।
- भरतपुर में ब्रह्मवाद की 17वीं सदी की बावड़ी।
- जोधपुर में राजलानी की 16वीं सदी की बावड़ी।
- भीलवाड़ा, शाहपुरा में 17वीं सदी की कच्छवाई कुंड।
- अलवर में 15वीं सदी की मचौड़ी रानी कुँआ, बावड़ी।
- भीलवाड़ा बिजौलिया का 12वीं–13वीं सदी का मंदाकिनी कुंड।
- उदयपुर का प्राचीन गंगू कुंड।
- नाथहारा की कृष्णकुंड, अहिल्या कुंड, सुंदर विलास व लाल कुंड।
- नागौर, छोटी खाटू की आठवीं शताब्दी ई. की जूल बावड़ी।
- पाली, नाडौल की दसवीं–बारहवीं शताब्दी की विशिष्ट उल्लेखनीय रानी बावड़ी।
- भीलवाड़ा, शाहपुरा की 19वीं शताब्दी की रानी जी की बावड़ी।
- बूंदी की काला जी की बावड़ी एवं नारू की बावड़ी।
- पाली की कोरटा बावड़ी एवं नौडवी बावड़ी।
- पाली की धाणेराव की बावड़ी एवं कुंड।
- सिरोही की झालराबाव, रतन बाव, धरावली बावड़ी एवं कनक बावड़ी।
- अलवर, किशन कुंड।

इस प्रकार यह महत्वपूर्ण बावड़ियां हैं जो हमारी प्राचीन जल–संरक्षण प्रणाली का आधार रही हैं। प्राचीनकाल, पूर्व–मध्यकाल व मध्यकाल में सभी बावड़ियों के बनाए जाने की जानकारी मिलती है। राजस्थान के तैंतीस ज़िलों में 3029 से अधिक बावड़ियां व कुंड हैं। इनके निर्माण की प्रकृति व डिज़ाइन उस जगह की प्राकृतिक स्थितियों, वर्षा की मात्रा, भूमिजल स्तर, मिट्टी के प्रकार, निर्माण करने वालों की आर्थिक स्थिति पर निर्भर करती हैं। यह बावड़ियां विभिन्न प्रकार से अलंकृत व सुसज्जित की गई हैं, जो उस समय के लोगों की कला के प्रति उनकी रुचि को दर्शाती हैं। आमतौर पर मंदिरों और धर्मिक स्थानों से जुड़ी हैं। जहां भक्त स्वयं स्नान करके स्वयं को शुद्ध कर सकता था। कई बावड़ियों में देवी–देवताओं की मूर्तियां भी स्थापित की गई हैं, ताकि जब कोई उस समय पानी भरने के लिए जाता था तो वह पहले देवता को नमन कर पूजा करता था एवं उसके बाद ही कुँए एवं बावड़ी में जाता था। इन मूर्तियों की स्थापना समुदाय द्वारा इन जल–स्रोतों के संरक्षण और रख–रखाव के महत्व को दर्शाता है।

यह बावड़ियां आम लोगों की दैनिक आवश्यकता को पूरा करने के साथ–साथ सौंदर्य से भरपूर हैं। यहां पर आने वाले सैलानी, जैनन्यूबर जोकि जोधपुर की बावड़ियों पर रिसर्च कर रहे थे, उनका कहना है, ''यह बावड़ियां न केवल राहत कार्यों का परिणाम हैं, बल्कि स्थापत्य कला का भी सजीव उदाहरण हैं।''

इसी तरह विकटोरिया लॉटमैन जोकि शिकागो की एक पत्रकार है, लिखती हैं कि वे इतने स्तरों पर सुंदर हैं कि ब्यान करना मुश्किल है। सबसे पहले वह आंखों को तेजस्वी दृश्य देती हैं....सुंदर, भव्य, रहस्यमयी और ऐतिहासिक रूप से महत्वूपर्ण हैं।

यह कथन सही है कि वर्तमान की समस्याओं को हल करने के लिए उनके साधन इतिहास की गर्त में छिपे हैं। या तो ज़मीन का पानी कम हो गया था, व्यवस्थाओं का पानी मर गया कि हमने इस धरोहर को खो दिया। हज़ारों की संख्या में बनी बावड़ियां खत्म हो गई और जो बची हैं, अब पर्यटन स्थल बन गई हैं। माना कि पानी की शुद्धता एक प्रश्न है, फिर भी.....जनसंख्या के रेले ने ज़मीनों को भी निगल लिया और कुँओं–बावड़ियों की अनदेखी ने उन्हें दफन कर दिया। अगर सरकारें सोचें तो बावड़ियों को बारिश के पानी से भरने के लिए काम में लिया जा सकता है। क्योंकि यह समस्या विकराल रूप ले चुकी है। भारतीय विज्ञान संस्थान के पर्यावरणविद् टी. वी. रामचन्द्र ने चेतावनी दी है कि शहरीकरण का दौर ऐसा ही चलता रहा तो 2020 तक भारत को सिलीकॉन वैली (बैंगलोर) का 94 प्रतिशत हिस्सा कंक्रीट में बदल जाएगा। उन्होंने यह भी कहा कि जल्द ही भारत का यह शहर केपटाउन में बदलने वाला है, जहां पानी का संकट इतना गहराता जा रहा है कि हज़ारों टैंकर पानी शहर तक पहुंचाने के लिए लाया जाता है।

रामचन्द्रन ने बारिश के पानी को बचाने की कवायद की है तथा उन्होंने कहा कि इसके लिए नई पीढ़ी को आगे आना होगा। अगर यह नहीं किया गया तो शायद तृतीय विश्व युद्ध पानी को लेकर ही होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूचि

1. अहा! ज़िन्दगी, दैनिक भास्कर प्रस्तुति, अगस्त 2016.
2. प्रसाद शुकदेव, विश्व व्यापी जल संकट, नया ज्ञानोदय बिन पानी सब सून, विशेषांक मार्च 2004.
3. hi.Pinkcity.com
4. hindi.indiawaterportal.org
5. rajasthanstudy.blogspot.in
6. अग्रवाल डॉ. विजय, जीवन प्रबन्धन, भाषा संस्कृति पर लेखन।
7. देवपुरा प्रतापमल, भागीरथ, अप्रैल–जून 2009, केन्द्रीय जल आयोग भारत।
8. अनुपम मिश्र, राजस्थान की रजत बूंदें, गांधी प्रतिष्ठान, नई दिल्ली।
9. Navbharattimes.indiatimes.com